एकादशी-व्रत का पालन केवल भगवान को प्रसन्न करने के लिए करें

श्रीलगुरुदेव

आज हरिवासर तिथि है। हरि की प्रिय तिथि है। कृष्ण कहते हैं— जैसे नागों में शेषनाग श्रेष्ठ हैं, यज्ञ में अश्वमेध यज्ञ श्रेष्ठ है, देवताओं में विष्णु श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी व्रतों में एकादशी व्रत सर्वश्रेष्ठ है। इसके आगे कहा कि 5000 साल तप करने का जो पुण्य मिलता है, एक एकादशी व्रत करने से वह पुण्य मिल जाता है। यह होता है कर्मकाण्ड। यदि हम किसी सांसारिक व्यक्ति को कहें कि

जो एकादशी में रात्रि जागरण करेगा और दिन-रात कुछ नहीं खाएगा उसे भगवान मिलेंगे, तब वह बोलेगा कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मुझे डॉक्टर के पास जाना पड़ता है, एक दिन नहीं खाने से तो मर जाऊँगा। भगवान को किसने देखा है?

किन्तु यदि कोई धनी व्यक्ति ऐसा कहे कि इस प्रकार व्रत करने से मैं उसे 5 लाख रुपए दूँगा, तो सब व्रत करने के लिए तैयार हो जाएँगे। तब वे सोचेंगे कि यदि व्रत करने से हम मर भी जाएँगे तो हमारे परिवार वालों को तो वे 5 लाख रुपए मिल ही जाएँगे। इसलिए हम व्रत करेंगे।

जब कहें कि भगवान की भक्ति के लिए, भगवान के प्रेम के लिए, भगवान की प्रीति के लिए व्रत करने से भगवान मिल जाएँगे, तब लोगों के पास समय नहीं है, उनकी तबीयत खराब हो जाएगी!

इस प्रकार यह सब फलश्रुतियाँ सांसरिक लोगों को आकर्षित करने के लिए दी गईं हैं। इसीलिए कहा गया कि 5000 साल तप करने से भी अधिक उन्नत फल देने वाला है- एकादशी का व्रत। एकादशी व्रत करने से भगवान को बहुत सुख होता है। शास्त्र भी बोलते हैं कि एक एकादशी व्रत करने के पुण्य के

बराबर और कोई तप नहीं है। पर यह सब पुण्य कर्मकांडी व्यक्तियों के लिए हैं, भक्तों के लिए नहीं। इसकी तुलना मिश्री अथवा लड्डू दिखाकर दवाई खिलाने से की गई है। यह समझने के लिए यहाँ एक बच्चे का उदाहरण दिया जाता है, जो बीमार है और जिसे डॉक्टर ने दवाई लेने के लिए कहा है। आजकल कैप्सूल हो गईं हैं। पुराने ज़माने में कैप्सूल नहीं हुआ करती थी, बीमार होने पर एक कड़वी दवाई खानी पड़ती थी जिसे खाना बड़ा कठिन होता था। इसलिए डॉक्टर के बार-बार दवाई खाने के लिए कहने पर भी वह बालक दवाई नहीं खाता। तब डॉक्टर उस बालक

के मां-बाप को पूछता है कि वह क्या पसंद करता है? वे कहते हैं कि वह रसगुल्ला बहुत पसंद करता है। तो एक गरम रसगुल्ला लाकर बच्चे को दिखाते हैं और पूछते हैं कि खाओगे? तो बच्चा कहता है—दो, दो, दो! तब माता-पिता कहते हैं कि नहीं, तुम पहले दवाई लो, तब तुम्हें रसगुल्ला मिलेगा। ऐसा कहने से बच्चा दवाई खाने के लिए तुरंत तैयार हो जाता है।

उस बालक को लगता है कि दवाई पीने से क्या मिलता है? रसगुल्ला। हम लोगों भी उस बच्चे की तरह ही हैं। एकादशी व्रत के

महात्म्य में इस प्रकार इसीलिए लिखा है क्योंकि जगत के लोग उस बच्चे की तरह ही हैं। वास्तव में एकादशी, हरिवासर तिथि भगवान की प्रिय तिथि है। एकादशी व्रत पालन करना 64 प्रकार के भक्ति अंगों में से एक है। यदि एकादशी व्रत धाम में किया जाए, तो अधिक गुना फल मिलता है। जहाँ संत ठहरते हैं, जहाँ पर सद्गुरु ने अपने आराध्य देव को प्रकाशित किया, वह मठ भी धाम है। वहाँ पर रहकर व्रत पालन करने की भी महिमा अधिक है।

अम्बरीष महाराज ने एक साल तक मथुरा मण्डल में रहकर

एकादशी व्रत पालन करके भगवान को अपनी सेवा से ऐसा तृप्त किया कि दुर्वासा ऋषि जैसे महा तेजियान ऋषि; जो हज़ार साल खाना नहीं खाकर रह सकते हैं और जो हज़ार साल का खाना एक दिन में ही खा सकते हैं, जिनका नाम सुनने से ही सब डरते हैं; उनका अभिशाप अम्बरीष महाराज को स्पर्श भी नहीं कर सका।

हरिवासर तिथि कर्मकाण्डात्मक व्रत पालन करने के लिए नहीं है। हमारा एकादशी व्रत केवल भगवान की प्रीति के लिए है।

आदौ गुरु पादाश्रय, कृष्ण-दिक्षादि-शिक्षा

विश्रम्भेण गुरु-सेवन, सद् धर्म शिक्षा,

साधु वर्तमानुवर्त्मन,कृष्ण प्रित्ये भोग त्याग,

कृष्ण तीर्थे वास, यवादार्थानुवर्दिता, एकादशी उपवास

धात्री अश्वथ गौ,विप्र, वैष्णव पूजन, सेवा नामापराध दूरे विसर्जन।

(चै॰च॰म॰ 22.111-22.123)

इस प्रकार 10 (क्रियाओं को) ग्रहण करना और 10 का वर्जन करना। उन मुख्य 10 क्रियाओं में से

एक है—एकादशी उपवास करना। इससे भगवान प्रसन्न होते हैं।

आजकल तो वैशाख मास को पहला प्रथम मास माना जाता है, पहले अग्रहायण मास साल का प्रथम मास होता है। इस मास में आने वाली एकादशी का नाम उत्पन्ना एकादशी है। उत्पन्ना एकादशी के महात्म्य में लिखा है कि भगवान स्वयं कहते हैं—तुम मेरी पराशक्ति हो। जो तुम्हारा व्रत पालन करेगा, मैं उससे बहुत प्रसन्न हो जाऊँगा।" तब से एकादशी व्रत का महात्म्य हो गया।

भगवान से ही उनकी परा प्रकृति ने निकलकर एकादशी मूर्ति धारण की। वेद व्यास मुनि सबके गुरु हैं। उन्होंने अठारह पुराण लिखे, महाभारत भी लिखी, उसके अन्तर्गत गीता भी लिखी, वेदान्त लिखे, वेदों को विभाजित किया। जीवों की आवश्यकता है—धर्म, अर्थ, काम। इस मनुष्य जन्म के बाद जिसके द्वारा हमारी श्रेष्ठ गति हो अथवा दुनिया में जन्म हो तो धनी परिवार में जन्म हो या स्वर्ग में जाएँ; इसके लिए धर्म शास्त्र लिखे। धन होने से लोग सुखी रहेंगे—यह सोचकर उन्होंने इसके लिए अर्थ शास्त्र प्रणयन किए। इसके अतिरिक्त

लोगों की कामना पूर्ति के लिए काम शास्त्र लिखे। किन्तु फिर भी उनके मन में शान्ति नहीं हुई। उन्होंने सोचा कि मैंने संसार के लोगों के मंगल के लिए जो उनकी आवश्यकता है, जिससे उन्हें सुख होगा, मन की शान्ति होगी, वह सब किया पर मेरे मन में शान्ति नहीं है। इसका कारण क्या है? तब वे अपने गुरु नारद गोस्वामी के पास बद्रीनारायण में गए और वहाँ पर जाकर उनके दर्शन किए और उन्हें प्रणाम किया। नारद गोस्वामी ने उनके अन्दर का भाव समझ लिया। तब नारद गोस्वामी ने उन्हें पूछा— 'तुम्हारी शरीर सम्बन्धी आत्मा, मन सम्बन्धी आत्मा कुशल

है न?” ‘तुम कुशल हो?’— ऐसा नहीं पूछा क्योंकि शरीर का अपना कोई अनुभव नहीं है। जब तक शरीर में चेतन वस्तु(आत्मा) रहती है, तब तक अनुभव होता है तथा स्थूल और सूक्ष्म देह से क्रिया होती है। आत्मा तो सदैव ही कुशल रहती है। आत्मा की कुशलता के बारे में पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा पूछने पर वेदव्यास मुनि ने कहा कि आप तो सब जानते हैं। मैंने जगत के मंगल के लिए कितना कुछ किया किन्तु मेरे मन में शान्ति नहीं है। इसपर नारद गोस्वामी ने पूछा— तुमने क्या किया?

वेदव्यास मुनि ने कहा—मैंने धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र और काम-शास्त्र लिखे।

तब नारद गोस्वामी कहते हैं—

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासत:
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रम: ।

यद्वाक्यतो धर्म इतीतर: स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जन: ॥
१५॥

(श्रीमद्भागवत 1.5.15)

जो धर्म-अर्थ-काम की व्यवस्था तुमने की है, वह बहुत ही निम्न स्तर काम किया है। इसमें बद्ध जीव की स्वभाविक ही रुचि है। हमें भगवान

की अपरा प्रकृति के द्वारा यह शरीर मिला है, जिसमें त्रिगुण हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। रजोगुण से जन्म लेते हैं, सत्त्व गुण से संरक्षण और तमोगुण से नाश होता है। ब्राह्मणों में सत्व गुण प्रधान होता है। क्षत्रियों में रजोगुण प्रधान होता है।वैश्य में रजोगुण तथा तमोगुण दोनों ही प्रधान होते हैं तथा शुद्र में तमोगुण प्रधान होता है। यदि हम शरीर में 'मैं' बुद्धि तथा अहंकार को लेकर कर्म करेंगे तो हमें इसके नाशवान परिणाम प्राप्त होंगे। यह शरीर नाशवान है तथा हमारी इन्द्रियों से सम्बन्धित विषय जैसे कि रूप,रस तथा गन्ध इत्यादि भी नाशवान हैं।

हम इस संसार की नाशवान वस्तुओं का संग करते हैं जो आनन्द तथा ज्ञान से रहित हैं। इसलिए आनंद और ज्ञान के अभाव का ही संग होता है। यह उस मृगतृष्णा के समान है जहां हम मरुस्थल में जल की उपस्थिति होने का अनुभव करते हैं। किन्तु वास्तव में वह एक भ्रम मात्र है। जब सूर्य की किरणें रेत पर पड़ती है तो वह वहाँ पर जल की उपस्थिति का भ्रम उत्पन्न करवाती है। किन्तु वास्तविकता में वहाँ पर जल नहीं होता तथा हिरण जल के लिए दौड़ता है जैसे-जैसे वह दौड़ता है,वैसे-वैसे जल की उपस्थिति भी उससे दूर होती जाती है और अन्त

में वह तृष्णा से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए यदि हम नाशवान वस्तुओं की प्राप्ति के लिए चेष्टा करें या स्वर्गलोक, जनलोक तथा तपलोक जैसे उच्च लोकों की कामना करेंगे तब भी हमें अपने बुरे तथा अच्छे कर्मों का भोग करने के लिए इस भौतिक संसार में पुनः आना पड़ेगा। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकम् विशन्ति।' अर्थात् पुण्य कर्मों के समाप्त हो जाने के उपरान्त दोबारा इस भौतिक संसार में आना पड़ेगा।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव

गुरु कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति लता बीज,

माली हैया करे सेइ बीज आरोपण

श्रवण, कीर्तन जले करये सिंचन,

उपाजीये बढे लता ब्रह्माण्ड भेदी याये

वीरजा ब्रह्म लोक भेदी पर व्योम पाय॥

विरजा भी दुःखमय स्थान है किन्तु सबसे अधिक दुःख इस जगत में है। इस जगत में दुःख की तीव्र लहरें हैं। विरजा में कोई उत्पत्ति नहीं है इसलिए वहाँ पर रजोगुण की कोई क्रिया नहीं है। किन्तु ज्ञान का अभाव

है। वहाँ पर दुःख की सम्यक्-अवस्था है, दुःख की लहरें नहीं हैं। विरजा से ऊपर ब्रह्म धाम है। वहाँ पर दुःख बिल्कुल नहीं है। वास्तव आनन्द है किन्तु आनन्द की लहरें नहीं हैं। वैकुण्ठ(परव्योम) में शान्त, दास्य और सख्य रस में नारायण की सेवा रूपी आनन्द की लहरें हैं।

ज्ञानी जिस ब्रह्मानन्द को पाने की चेष्टा करते हैं, उस ज्ञान के विषय में शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य
उत्तमश्लोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं
यदधीतवान् ॥ ९ ॥

(श्रीमद्भागवत 2.1.9)

शुकदेव गोस्वामी परीक्षित महाराज से कहते हैं, "ज्ञानी लोग भगवान के जिस ब्रह्म रूप को अनुभव करने की चेष्टा करते हैं, उस ब्रह्म रूप के अनुभव में मैं बाल्यकाल से ही प्रतिष्ठित था।" किन्तु जब मैंने अपने पिता से कृष्ण की दिव्य लीलाओं का श्रवण किया तब भगवान कृष्ण ने मेरे हृदय को पूर्णतया अपनी ओर आकर्षित कर अतः हे राजन, मैं आपको यह परामर्श देता हूँ कि आप स्वयं को अन्य ऋषियों, मुनियों द्वारा कहे गए ध्यान, तप, योग, कर्म तथा ज्ञान

आदि क्रियाओं में संलग्न ना करें। आप सब कुछ छोड़ कर मात्र सात दिनों के लिए स्वयं को निरन्तर भगवान श्री कृष्ण की दिव्य लीला महिमा को श्रवण करने में संलग्न करें। पूर्व में मैं पूर्णतया ब्रह्मानन्द में प्रतिष्ठित था किन्तु भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं का महिमा गुणगान सुनने के पश्चात पूर्णतया उनकी ओर आकृष्ट हो गया तथा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के उस अनुभव का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं रहा। इसलिए आप सात दिन के लिए श्रीमद्भागवतम् को श्रवण करें। उस समय वहाँ पर भारद्वाज, च्यवन, भृगु, अंगिरा इत्यादि सब बड़े-बड़े अनेक महान

ऋषि तथा मुनि उपस्थित थे। किन्तु किसी में भी शुकदेव गोस्वामी के परामर्श का खण्डन करने का साहस नहीं हुआ। आगे वेदव्यास मुनि ने अपने गुरु नारद गोस्वामी से कहा, "मैंने तो मुक्ति के लिए भी व्यवस्था की। तब नारद गोस्वामी ने कहा कि यह तो और भी घृणित कार्य है। आपने जीवों के प्रेमानंद की प्राप्ति के सभी रास्ते पूर्णतया बन्द कर दिए। आपने अनन्त समय के लिए उन जीवो को कृष्ण प्रेम प्राप्ति से वन्चित कर दिया है। यह आपके द्वारा प्राणियों को दी गई बहुत बड़ी क्षति है। आपने उनके प्रति हिंसा की है। किसी के द्वारा भगवान की प्राप्ति के

पथ में किसी भी प्रकार का विघ्न उत्पन्न करना बहुत बड़ी हिंसा है। जैसे—एक स्त्री जो अपने पति की सेवा तो करती है किन्तु उसके बदले में उसकी कुछ कामनाएं हैं। कामना पूर्ण होने पर ही वह सेवा करती है जैसे कपड़े, आभूषण इत्यादि। उसके पति ने उसे बड़े प्यार से समझाया कि तुम्हारी जो भी इच्छाएं हैं वह सब पूर्ण हो जाएंगी तुम मात्र मुझे हृदय से प्रेम तथा स्नेह-पूर्वक सेवा करो। तुम सेवा के बदले में कुछ पाने की इच्छा क्यों करती हो? तुम सेवा किसी अन्य उद्देश्य मत करो। किन्तु वह स्त्री ऐसा नहीं कर पाती। जब पति ने थोड़ा समझाने का प्रयत्न किया तो

वह क्रोधित हो गई तथा बोली कि ठीक है, मैं सब कुछ छोड़ दूंगी। यह बोलकर वह स्वयं के गले में रस्सी डालकर आत्महत्या कर लेती है। अब वह पति की सेवा से पूर्णतया वन्चित हो गई। पहले की स्थिति फिर भी अच्छी थी। कम से कम वह अपने पति की सेवा कर सकती थी चाहे उसके मन में कुछ कामनाऐं थी। इस प्रकार जीव द्वारा मोक्ष की कामना करना वास्तव में कपटता है, जो भगवान की सेवा के सुयोग को जड़ सहित समाप्त कर देती है तथा जीव भगवान की प्रेममयी सेवा से वन्चित हो जाता है।

अज्ञान तमेर नाम कहिए कैतव

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, वान्छा आदि सब,

तार मध्ये मोक्ष वान्छा कैतव प्रधान

यहाँ हैते कृष्ण भक्ति हैय अन्तर्धान।

(चै०च०आ० 1.91-1.92)

अज्ञानता रूपी अंधकार को कैतव कहा जाता है। कपटता करने का आरम्भ जीव द्वारा धार्मिकता, आर्थिक विकास, इन्द्रिय तृप्ति तथा मुक्ति पाने की इच्छाओं से होता है। और इनमें से सबसे बड़ी कपटता जीव द्वारा मुक्ति पाने की इच्छा है जिसमें वह भगवान में विलीन हो

जाता है तथा भगवान कृष्ण की आनन्दमयी सेवा के अवसर को सदा के लिए खो देता है।

इसलिए नारद गोस्वामी ने वेदव्यास जी से कहा, "तुमने जीवों को सबसे अधिक क्षति पहुंचाई है, अब तुम उनके वास्तविक कल्याण के लिए कार्य करो।"

वेदव्यास मुनि बोले, अच्छा होगा यदि कोई और आदरणीय व्यक्ति जीवों के कल्याण तथा मंगल के बारे में लिखें। नारद गोस्वामी ने कहा नहीं,आप समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। यदि आप लिखेंगे तो सभी का ध्यान इस ओर

आकर्षित होगा। जिस मुख से आपने धर्म,अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि का वर्णन किया उसी मुख से कृष्ण का महात्मय कीर्तन करो।

वेदव्यास जी बोले, मैंने भगवान की महिमा का वर्णन महाभारत में गीता में किया है।

नारद गोस्वामी ने कहा, यह यथेष्ट नहीं है। आपको मात्र भगवान की सन्तुष्टि के लिए लिखना चाहिए। आपको भगवान कृष्ण की महिमा का कीर्तन उनकी प्रसन्नता के लिए करना चाहिए। आपने गीता में जो लिखा है वह अन्य-अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए है।

इस प्रकार बोलकर नारद गोस्वामी ने उन्हें चतुःश्लोकी भागवतम् (पूर्व में श्रीमद्भागवत मात्र चार श्लोकों में ही सम्पूर्ण थी) प्रदान की। इसके पश्चात भगवान श्री कृष्ण के कृपा-अवतार रूप नारद गोस्वामी की कृपा से उन्होंने ध्यान किया तथा फल स्वरुप जो शक्ति प्राप्त हुई उसके द्वारा उन्होंने भगवान के नाम रूप, गुण, लीला का दर्शन किया तत्पश्चात श्रीमद्भागवतम् की रचना की।

उन्होंने लिखा किस प्रकार एक साधारण जीव इस संसार के भौतिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इसलिए कहते हैं कि हम जो भी व्रत करेंगे, भगवान की प्रीति के लिए करेंगे।

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणः सह।

उपवासः स विज्ञेयः
सर्वभोगविवर्जितः"॥

(श्री हरि भक्ति विलास-13.14)

अर्थात सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर और सभी सद्गुणों को के साथ भगवान के निकट वास करना ही एकादशी व्रत का वास्तविक उद्देश्य है।

समस्त भोग; चाहे पुण्य, चाहे पाप, उनका त्याग करना होगा। जब हम भोग के लिए चेष्टा करते हैं, उससे अपने से निकृष्ट वस्तु का, जड़ वस्तु का, अनित्य वस्तु का संग होता है। इसलिए कहा गया है कि समस्त भोगों को त्यागकर, समस्त सद्गुणों के साथ भगवान के निकट में वास करना (ही उपवास का वास्तविक अर्थ है)।

किन्तु भगवान के निकट में कैसे रहें?

हरिर्हि निर्गुण: साक्षात् पुरुष: प्रकृते: पर: ।

स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत् ॥

(श्रीमद्भागवत १०.८८.५)

जो श्रीहरि प्रकृति के अतीत निर्गुण पुरुष हैं, मैं उनके पास प्राकृत शरीर लेकर कैसे जा सकता हूँ? इस प्राकृत शरीर को लेकर हम प्रकृति के अतीत जगत में नहीं जा सकते। इसके सम्बन्ध में कहा गया है—

आदौ गुरु पादाश्रय, कृष्ण-दिक्षादि-शिक्षा

विश्रम्भेण गुरु-सेवन, सद् धर्म शिक्षा

१. सर्वप्रथम जीव को एक ऐसे गुरु का चरणाश्रय करना चाहिए जो

श्रोत्रियम हो अर्थात उन्होंने भगवत ज्ञान की प्राप्ति एक ऐसे ब्रह्म-निष्ठ तथा वास्तविक प्रमाणिक गुरु परम्परा से प्राप्त की हो जो पूर्ण रूप से भगवत ज्ञान में प्रतिष्ठित हो।

२. तत्पश्चात उनसे दीक्षा ग्रहण कर कृष्ण शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।

३. उत्साह पूर्वक निष्कपट हृदय से गुरुदेव की सेवा करनी चाहिए।

४. वैष्णोवों द्वारा बतलाए गए पथ पर चलना चाहिए।

महत कृपा बिना कोन कर्मे भक्ति नाइ,

कृष्ण भक्ति रहु संसार नहीं क्षय।।

(चै०च०म० 22.51)

अर्थात जब तक कोई शुद्ध भक्त का आश्रय ग्रहण नहीं करेगा तब तक वह अध्यात्मिक सेवा की प्राप्ति नहीं कर सकता। कृष्ण भक्ति के बिना कोई भी इस संसार से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

जैसा कि हम चैतन्य चरितामृत में देखते हैं।

दीक्षा काले शिष्य करे आत्मसमर्पण,

सेइ काले कृष्ण तारे करे आत्मसम।

सेइ देह करे तारे सिद्ध आनन्दमय,

अप्रकट देहे कृष्ण चरण भजये।

अर्थात दीक्षा मन्त्र ग्रहण करते समय शिष्य गुरु के चरणों में स्वयं को आत्मसमर्पण कर उनका पूर्ण रूप से आश्रय ग्रहण करता है। भगवान का श्री विग्रह भगवान से सर्वथा अभिन्न है। भगवान श्री कृष्ण गुरुदेव के माध्यम से भक्तों को सिद्ध आनन्दमय स्थिति प्रदान करते हैं जिसके द्वारा भगवान श्री कृष्ण की इस प्राकृतिक देह द्वारा सेवा की जा सकती है।

भगवान श्री हरि संसार में सर्वत्र विराजान है। जैसा कि पहले कहा

गया है, दीक्षा काले शिष्य करे आत्मसमर्पण- हमें पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण अर्थात शरणागत होकर गुरु पदाश्रय ग्रहण करना चाहिए। श्रीला गुरुदेव भगवान का कृपा स्वरूप हैं। किन्तु मैं गुरु नहीं हूँ। हमारे गुरुजी ही सबके गुरुदेव है। मैं तो मात्र उनका आदेश पालन करने के लिए मन्त्र प्रदान करता हूँ। जब मेरे गुरुदेव ने इस नश्वर संसार को छोड़ा था, तब उनके गुरु भ्राता तथा मेरे शिक्षा गुरु श्रील भक्ति प्रमोद पूरी गोस्वामी महाराज ने मुझे हमारी संस्था (मठ) का उत्तरदायित्व लेने का आदेश दिया था। उसके बाद श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने भी

मुझे संस्था का दायित्व लेने के लिए बाध्य किया था तथा कहा था कि यदि तुम यह दायित्व नहीं लोगे तो तुम्हारे गुरुदेव द्वारा बनाई गई इस संस्था को बहुत बड़ी क्षति पहुंचेगी जिसका कारण तुम बनोगे। तब मैंने उनकी मनोदशा को समझते हुए तथा उनके आदेश को ग्रहण करके संस्था के दायित्व को संभाला। इसलिए हमें गुरुदेव के आदेश का पालन करना चाहिए। क्योंकि वे श्री हरि से सर्वथा अभिन्न है। श्रीला भक्ति विनोद ठाकुर जी लिखते हैं.....

एमन दुर्मति, संसार भितरे, पड़िया
आछिनु आमि।
तव निज-जन, कोन महाजने,
पाठाइया दिले तुमि॥1॥

दया करि मोरे, पतित देखिया,
कहिल आमारे गिया।
ओहे दीनजन, शुन भाल कथा,
उल्लसित हबे हिया॥2॥

तोमारे तारिते, श्रीकृष्णचैतन्य,
नवद्वीपे अवतार।
तोमा हेन कत, दीन हीन जने,
करिलेन भवपार॥3॥

वेदेर प्रतिज्ञा, राखिवार तरे,
रुक्मवर्ण विप्रसुत।

महाप्रभु नामे, नदीया माताय, संगे भाई अवधूत॥4॥

नन्दसुत यिनि, चैतन्य गोसाईं, निज-नाम करि दान।
तारिल जगत्, तुमिओ याइया, लह निज-परित्राण॥5॥

से कथा शुनिया, आसियाछि, नाथ!
तोमार चरणतले।
भक्तिविनोद, काँदिया काँदिया,
आपन काहिनी बले॥6॥

मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह कीर्तन प्रत्यक्ष रूप से मेरे जीवन से सम्बन्धित है। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने जितने भी

ग्रन्थों तथा कीर्तनों की रचना की है, वह सब मेरे हृदय को गहराई से स्पर्श करते हैं।

श्रीला भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद महाप्रभु का कृपामयी रूप है तथा हमारे गुरुदेव श्रीला भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज उन्हीं प्रभुपाद का विस्तार रूप हैं। उन्होंने कृपा पूर्वक मुझे अपनी शरण में लिया। यदि हम गुरु का पूर्ण रुप से आश्रय ग्रहण करेंगे तो भगवान गुरु के माध्यम से हमें सच्चिदानन्द अवस्था प्रदान करेगें।

सद्गुरु के पास जाकर तथा पूर्ण रूप से शरणागत होकर उनका

आश्रय ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है किन्तु श्रीमन महाप्रभु ने इसे अत्यन्त सरल बना दिया। श्रीमन महाप्रभु ने एकादशी तिथि के दिन श्रीवास आंगन में क्या किया?

श्रीहरि वासरे हरि कीर्तन विधान,

नृत्य आरम्भिला प्रभु जगतेर प्राण।

श्रीमन महाप्रभु सभी जीवों की आत्मा तथा प्राण स्वरूप हैं। वह स्वयं श्री कृष्ण हैं, जो श्रीमती राधा रानी का भाव लेकर इस धरा पर अवत्तीर्ण हुए हैं।

पुण्यवन्त्त श्रीवास आंगने शुभारम्भ,

उठिला कीर्तन ध्वनि गोपाल

गोविन्द,

हरि ओ राम, हरि ओ राम।

यही कीर्तन ऊंचे स्वर से करते हुए महाप्रभु ने चांद काजी का उद्धार किया था।

तो इस प्रकार हमें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक शुद्ध वैष्णव के संग में रहकर तथा भगवान जो हमारे हृदय में वास करते हैं, उनको पूर्ण रूप से शरणागत होकर, यदि हम हृदय से स्मरण करेंगे तो वे निश्चय ही हमारी रक्षा करेंगे।

श्रीला भक्ति विनोद ठाकुर अपने एक अन्य कीर्तन में लिखते हैं—

आत्म निवेदन तुया पदे करी

हईनु परम सुखी,

दुःख दूरे गेल चिन्ता ना रहिल

चोदिके आनन्द देखी।

यहाँ तुया का अर्थ है, "आपका"। किन्तु "आपका" शब्द से क्या अभिप्राय है? "आपका" से अर्थ है, भगवान के "श्री चरण कमल"। जहाँ मैंने स्वयं को पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया है। हम उन्हें प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते।

भगवान् हृदय में विराजमान हैं, जब हम हृदय से उन्हें पुकारेंगे, वे अवश्य ही सुनेंगे।

प्रतिष्ठानपुर में एक गरीब ब्राह्मण रहते थे। गरीब होते हुए भी वे प्रतिदिन भगवान नारायण की सेवा करते थे और जिस किसी प्रकार से भोग अर्पित करते थे। एक दिन उनके मन में भगवान को खीर निवेदन करने की इच्छा हुई। उन्होंने मन ही मन में खीर बनाई। खीर बनाते-बनाते बहुत समय बीत गया। इसलिए उन्होंने खीर को जल्दी से बर्तन में डाला और भगवान को अर्पण कर दिया। अचानक उन्हें याद आया कि

उन्होंने भगवान को गरम खीर ही अर्पित कर दी। इसलिए उन्होंने उसी समय अपने हाथ की उंगली को उस गरम खीर में डालकर देखा। यह सब वे मानसिक रूप से ही कर रहे थे। उनके पास न खीर है, न आग है, कुछ नहीं है। उंगली डालने से उनका हाथ जल गया। तब उन्होंने सोचा कि मेरा भगवान विष्णु के चरणों में अपराध हो गया। ब्राह्मण की यह क्रिया देखकर वैकुण्ठ में लक्ष्मी देवी द्वारा सेवित हो रहे भगवान विष्णु हंस पड़े। लक्ष्मी देवी द्वारा हंसने का कारण पूछने पर उन्होंने ब्राह्मण का सारा वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर लक्ष्मी देवी की ऐसे भक्त का दर्शन

करने की इच्छा हुई। सो भगवान ने गरुड़ को पुकारा और उस ब्राह्मण को वैकुण्ठ में लाने का आदेश दिया। इसलिए कौन क्या करता है, भगवान सब जानते हैं। उनको कोई धोखा नहीं दे सकता। भगवान भीतर में विराजमान हैं। कुछ बोलने से वे नहीं सुनेंगे, यह बात नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे स्थान पर हमारा नाम ले, हम नहीं सुन पाएँगे। किन्तु' हम जहाँ पर भी हों, हृदय से पुकारने पर भगवान वहीं आ जाएँगे। नहीं आएँगे, यह बात नहीं है।

इसलिए कहा—

आत्म निवेदन तुया पदे करी, हईनु
परम सुखी,
दुःख दूरे गेल चिन्ता ना रहिल,
चोदिके आनन्द देखी।।

इस प्रकार यदि कोई भगवान को सम्पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण करता है तो उसे परम शान्ति प्राप्त होगी। उसके सभी प्रकार के दुःख दूर हो जाएंगे तथा किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहेगी। वह सभी दिशाओं में आनन्द ही आनन्द देखेगा। किन्तु यह तभी सम्भव है, यदि हम अपने हृदय से पूर्ण रूप से प्रभु को आत्मसमर्पण करें, केवल बोलने मात्र से ऐसा नहीं हो पाएगा।

यदि हम सभी दिशाओं में आनन्द नहीं देख पा रहे हैं तथा हमारे दुःख दूर नहीं हो पा रहे हैं, तब हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमने पूर्ण रूप से प्रभु को आत्मसमर्पण नहीं किया है। हमने मात्र मुख द्वारा बोला है, उसे व्यवहारिक रूप में नहीं ला पाए। किन्तु शुद्ध भक्तों की संगति के बिना ऐसा करना सम्भव नहीं है। छह प्रकार की शरणागति प्राप्त करने के लिए शुद्ध वैष्णवौं का संग अत्यन्त आवश्यक है।

अशोक अभय अमृत आधार तोमार चरण द्वय,

ताहाते एखन विश्राम लभिया छाड़िनु भवेर भय।।

अर्थात् आपके श्री चरण कमल अभय अमृत के भण्डार रूप हैं, जहाँ व्यक्ति दुःख तथा भय से मुक्त रहता है। अब मैंने आपके श्री चरणो में परम शान्ति प्राप्त की है तथा इस संसार के भय से मुक्त हो गया हूँ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

हमें इस महामन्त्र का जप हृदय से करना चाहिए।

तोमार संसारे करिब सेवन नाहिब फलेर भागी,

तव सुख जाहे करिब. हये पदे अनुरागी।

यह संसार भगवान का है, हमारा संसार नहीं है,हम उनके द्वारा बनाई गई सृष्टि में रहते हैं। इसलिए हमें उनकी सेवा करनी चाहिए तथा उस सेवा से प्राप्त फल का आनन्द लेने का प्रयास नहीं करना चाहिए।किन्तु हम अपने द्वारा की गई सेवा का फल चाहते हैं। मात्र उनके सुख के लिए यत्न करना चाहिए। यदि हमें दु:खों से निवृत्त होकर सुख चाहिए तो हमें स्वयं को पूरी तरह से

उनके चरणों में समर्पित करना चाहिए।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

तोमार सेवाये दुःख हय जत, सेई तो परमसुख,
सेवा सुख दुःख परम सम्पद नाशये अविद्या दुःख।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरेहरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

यदि हम भगवान को हृदय से स्मरण करेंगे तो वे स्वयं हमारे पास

आ जाएंगे और हमें उन्हें बुलाने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। आमि तो तोमार तुमि तो आमार की काज अपर धने अर्थात् मैं भगवान श्री कृष्ण का हूँ और भगवान मेरे हैं। मैं उनका हूँ, मेरा यह शरीर भी उन्हीं का है। फिर भला मुझे किसी ओर के धन की क्या आवश्यकता है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

भक्ति विनोद आनन्दे डुबिया, तोमार सेवार तारे,
सब चेष्टा करे तव इच्छा मत थाकिया तोमार घरे।।

यदि हम पूर्ण रूप से भगवान के शरणागत हो जाएंगे तो हमारे सारे कष्ट दूर हो जाएंगे। सब कुछ स्वयं ही ठीक हो जाएगा।

गौर हरि बोल!!!!

श्रीलगुरुदेव